शहर
अब भी सम्भावना है

अशोक वाजपेयी

*



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक-२२८
सम्पादक एव नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन

Lokodaya Series Title No 228
SHAHAR AB
BHEE SAMBHAVANA HAI
(Poems)
ASHOK VAJPEYIE
Bharatiya Jnanpith
Publication
First Edition 1966
Price Rs 3 00

प्रकाशन
प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता २७
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी ५
विक्रय-केन्द्र
३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली ६
प्रथम संस्करण १९६६
मूल्य ३ ००

सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी ५

दिदिया
और काका को

मेरे प्रारम्भ में ही मेरा अन्त है'

—टी० एस्० ईलियट

क्रम

●

० ● ०

शहर
अब भी
सम्भावना है

अपनी आसन्नप्रसवा माँ के लिए
तीन गीत

काँच के टुकड़े

काँच के आसमानी टुकडे
और उनपर बिछलती सूर्य की करुणा
तुम उन सबको सहेज लेती हो
क्योकि तुम्हारी अपनी खिडकी के
आठो काँच सुरक्षित हैं
और सूर्य की करुणा
तुम्हारे मुँडेरो भी
रोज बरस जाती है।

जीवित जल

तुम ऋतुओ को पसन्द करती हो
और आकाश मे
किसी न-किसी की प्रतीक्षा करती हो—
तुम्हारी बाँहे ऋतुओ की तरह युवा हैं
तुम्हारे कितने जीवित जल
तुम्हे घेरते ही जा रहे हैं।
और तुम हो कि फिर खडी हो
अलसायी, धूप-तपा मुख लिये
एक नये झरने का कलरव सुनती
—एक घाटी की पूरी हरी महिला के साथ।

शहर अब भी सम्भावना है

तुम्हारी आँखों में नयी आँखों के छोटे-छोटे दृश्य हैं,
तुम्हारे कन्धों पर नये कन्धों का
हलका-सा दबाव है—
तुम्हारे होठों पर नयी बोली की पहली चुप्पी है
और तुम्हारी उँगलियों के पास कुछ नये स्पर्श हैं
माँ, मेरी माँ,
तुम कितनी बार स्वयं से ही उग आती हो
और माँ, मेरी जन्मकथा कितनी ताज़ी
और अभी-अभी की है।

१९६०

■

साँझ : शिशुजन्म

—मैंने सुना
बरसात की उस धुली शाम
मैंने सोचा
अशोक का भी तो फूल होता है
जिसे मैंने नहीं देखा,
प्रतीक्षा मैं कर नहीं सकता
न की है
फूल की—
कि एक साझ बुझते आलोक में
देखूँ कि खिडकी के पास,
उसके सीकचे से लिपटा
खिल आया है फूल एक, साझ का, गुलाब में

मुझे लगा
झरना कहीं एक हरे पेड के नीचे से
बहकर चुपचाप
कहीं पास, बहुत पास मेरे आ गया है

मैंने कहा
इस धुली शाम के सडको पर बिखरे
धुँधले और छोटे अनगिनत आइने हैं
धूप का टुकडा भी साँझ का है
और वह,
जो अभी उन पेडो के शिखरो पर दमका है

मैंने गाया—
कल का दिन धूप की नदी हो
कल का दिन नन्ही-सी चिड़िया हो
कल का दिन भीगी-हरी डाल पर खिला धुला
फूल हो—

१६५६

माँ

खिडकी के पार
चमकदार अँधकार
अलग-अलग विरूप चेहरो मे
        बँट गयी भीड की तरह
भयभीत करते हैं तुम्हे तारे

एक भारी ठण्डक मे सहमा हुआ
तुम्हारा शरीर याद करता है
अपना निरन्तर अपमान—
तुम्हारा हृदय पश्चात्ताप बनकर
डूबने लगता है तुम्हारे शरीर की घृणा मे
कि तभी तुम्हारे हाथ अचानक छू लेते हैं
बगल मे सोये पाचवें बच्चे का शान्त-सरल शरीर
तुम्हारी आँखो मे तिर आती है जन्मकथा
और शरीर बन जाता है एक स्वप्नमय भविष्य
खिडकी के पार तारे स्वर्ग से झिलमिलाते हैं
और तुम्हारा हृदय
एक प्रार्थना-सा उनकी ओर बढने लगता है
भोर होने के बहुत पहले
तुम्हारी दैनिक भोर होती है।



लौटकर जब आऊँगा

माँ,
लौटकर जब आऊँगा
क्या लाऊँगा ?
यात्रा के बाद की थकान,
सूटकेस म घर-भर के लिए कपडे,
मिठाइया, खिलौने,
बडी होती बहनो के लिए
अन्दाज से नयी फैशन की चप्पलें ?
या रक्त की एक नयी सिद्धि
और गढी हुई वीरगाथाएँ ?

क्या मैं आकर कहूँगा
मैंने दिन काटे हैं—एक समृद्ध आदमी की तरह
अपने परदे-ढँके कमरे की खिडकी से
मकानो की काई-रची दीवारो पर
निर्विकार आती सुबह देखते हुए ?

या क्षुद्रताओ की रक्षा मे
निजन द्वीप समूहो मे
समुद्र से अकेले लडते हुए ?

क्या मै बताऊँगा
कि मैं आया हूँ

अँधेरी गुफाओ मे से
जहाँ भूखी कतारें
रह-रहकर चिल्लाती हैं
गिद्धो और चीलो की चीत्कारो के बीच
माँ, तुम्हारा प्रिय शोकगीत
'रघुपति राघव राजाराम '?

क्या मै तुमसे कहूँगा
खुश हो माँ, अन्त आ गया है
—जिसकी तुम्हे प्रतीक्षा थी
क्योकि मैंने देखा है
नीले अश्व पर आरूढ
भव्य अवतारी पुरुष को ?

या मैं सिर्फ एक क़िस्सा सुना पाऊँगा
नीले घोडे पर सवार एक पिचके निर्वीर्य चेहरेवाले
आदमी की मौत का
एक छोटे-से गाव मे ?

या तुम्हारी तीखी नजर को बचाते हुए
दूसरे खिलौनो के साथ
अपने छोटे भाई को दूँगा
एक काठ का नीला घुडसवार ?

—क्या मै लौटूँगा
अपनी निर्जल आँखो मे अपमान भरे
जो अब हर रास्ते पर छाया है
आकाश की तरह
और तब,

क्या तब तुम पहली बार पहचानोगी
मेरे चेहरे में छुपा
अपना ही ईश्वरदूपित चेहरा ?

मां,
लौटकर जब आऊँगा
क्या लाऊँगा ?

■

वसन्त के लिए एक कामना

अभी मेरे पास
सिर्फ तेरी आँखों की चमक है—
वाद्यगीतो और गूँजती आवाज़ो के बीच
मुझे सुनने दो, सीढियो के पास
अपने लिए खिला वसन्त सुमन।

उत्सव की लपटो मे
मेरा नगर जल रहा है,
मेरे मित्रो की आँखें सूखकर
चट्टानो के काले टुकडे बनती जा रही हैं—
और एक छूँछा आकाश मेरे सिर पर लदता जा रहा है।

सिर्फ मेरे हाथ हैं
—जो भाषा सँभाले हैं
सिर्फ मेरे होठ हैं
—जो गान थामे हैं
धुएँ से आग से मुझे बचाने को
वह हुलसी हुई भाषा और
वह पिघलता संगीत।

मुझे छूने को वह पीला आलोक वेग
वह पत्तियो की हरी रचनाएँ
वह खिलखिलाता हरा दृश्य—

मुझे भेंटने दो, वह वसन्त
वह मेरा रक्त-सुमन !

ओ खोते हुए वाद्यकारो, ओ मिटते हुए उत्सवनर,
ओ गूँजती हुई आवाज़ोंवाले लोगो,
मुझे सुनने दो
सीढ़ियों के पास बनती
अपने लिए, रक्ताभ धुन
—वह वसन्त-सुमन !

१९६०

■

युवा जगल

एक युवा जगल मुझे,
अपनी हरी उँगलियों से बुलाता है।
मेरी शिराओं मे हरा रक्त बहने लगा है
आँखो मे हरी परछाइयाँ फिसलती है
कन्धो पर एक हरा आकाश ठहरा है
होठ मेरे एक हरे गान मे काँपते हैं
मै नहीं हूँ और कुछ
बस एक हरा पेड हूँ
—हरी पत्तियों की एक दीप्त रचना!
ओ जगल युवा,
बुलाते हो
आता हूँ
एक हरे वसन्त मे डूबा हुआ
आऽ ताऽ हूँ—

१६५६



सूर्यास्त

सूर्यास्त ने चेहरो पर लिख दिया
सगीत का
एक मौन !
एक चेहरे मे कापी एक टहनी
एक चेहरा कुसुमित हो आया
थकते नयनो मे
झिलमिलाया
ठहर गया फिर फिर आलोकजल ।
चेहरो के उस करुण सयम मे
साझ-गन्धित कांप गया मैं भी
कही खिलने की पीडा से
न टहनी-सा, न कुसुम-सा, न कलरव-सा
फिर भी मै काप गया—
बार-बार
अपने ऊसर आकाश से
रक्तकुसुमित चेहरे को
पुकारता पुकारता ।

१९६१



उषाओं के गर्भ मे

उषाओ के गर्भ मे भटकती
मेरी आवाज़ है

और असख्य छायाभासो के पीछे कही
आकाश-सी सोयी हुई तू है
कि कापता-सिहरता लयो का सुनसान
जो शायद मै होता
कि झिलमिल उत्सुक उजालो का बहाव
जो शायद तू होती ।

आ
कि आ जिसकी प्रतीक्षा मे मैं हूँ
तू है
उसे सचमुच जन्म दें ।

आ
इन खुलती आभाओ के पीछे कही से आ
और मेरी भटकती आवाज़ को थाम
एक नीरव तारे-सा स्थिर कर दे ।

आ
उषाओ के गर्भ मे भटकती
मेरी अँधेरी आवाज़ है—

१९६०

■

पहला चुम्बन

एक जीवित पत्थर की दो पत्तियाँ
रक्ताभ, उत्सुक
काँपकर जुड़ गयीं,
मैंने देखा
मैं फूल खिला सकता हूँ।

१६६०

प्यार करते हुए सूर्य स्मरण

जब मेरे होठो पर
तुम्हारे होठो की परछाइयाँ झुक आती हैं
और मेरी उँगलिया
तुम्हारी उँगलियो की धूप मे तपने लगती है
तब सिर्फ आँखें हैं
        जो प्रतीक्षा करती है मेरे लौटने की
उन दिनो मे जब मैं नही जानता था
कि दो हथेलियो के बीच एक कुसुम होता है
                        —सूर्यकुसुम !

जब अँधेरे दरवाजे पर खडे होकर
तुम एक गीत अपने कन्धो से
मेरी ओर उडा देती हो
और मै एक पेड की तरह खडा रहता हूँ
तब सिर्फ आखें हैं
        जो प्रतीक्षा करती हैं मेरे लौटने की
उन दिनो मे, जब मैं नही जानता था
कि दो चेहरो के बीच एक नदी होती है
                        —सूर्यनदी !

जब तुम मेरी बाँहो मे
साँझ-रग-सी डूब जाती हो
और मैं जलबिम्बो-सा उभर आता हूँ

तब सिर्फ आँखें हैं
जो प्रतीक्षा करती हैं मेरे लौटने की
उन दिनों में, जब मैं नहीं जानता था
कि दो देहों के बीच एक आकाश होता है
—सूर्यआकाश।

१९६०

~

जब हम प्यार करते हैं

जब हम प्यार करते हैं
तब यह नही कि आकाश अधिक दयालु हो आता है
या कि सडकों पर अधिक खुशी चलने लगती है
बस यही कि कही किसी बच्ची को
अपनी छत से उगता सूरज
और पडोस की बछिया देखना अच्छा लगने लगता है
कही कोई भीड मे बुदबुदाते होठों मे प्रार्थना लिये
एक जनाकीर्ण सडक सकुशल पार कर जाता है
कही कोई शान्त मौन जल
कंकड से नही, अपने सगीत से जगाता बैठा रहता है
जब हम प्यार करते हैं
तो दुनिया को छोटे-छोटे अशो मे सिद्ध करते हैं
और सुन्दर भी, और समृद्ध भी

हम वसन्त को आसानी से काट देते हैं
और उसे एक ऐसे सयोग मे गढ देते हैं
जो न ऋतुगान होता है, न टहनियाँ और न कोई स्पष्ट आकार
न काव्य, और न फूलो – चिडियो का कोई सिलसिला—
हम उसे दुनिया के हाथो मे फेंक देते हैं
और दुनिया जब तक उसे देखे परखे
हम चल देते हैं
छुप जाते हैं
ऋतु मे, या काव्य मे, या टहनियो के आकाश मे—
१९६०

■

वसन्त-दिन

आज का दिन पूरा का पूरा एक वसन्त है
कल पत्ते नहीं थे और फल झर चुके होंगे
आज का दिन पूरा का पूरा एक वसन्त है
और तुम एक वृक्ष हो
अपनी हर उग सकनेवाली पत्ती के
और अपने हर खिल सकनेवाले फूल के साथ
और सिर्फ इतनी झुकी हुई
कि मैं तुम्हें उठँग कर छू ले सकता हूँ

१६६०

एक वसन्त की तरह

मैं जो
कुछ नये फूल, सफेद बादल
और उजली धूप देता हूँ
तो कहीं लिखा नहीं जायेगा
कि मैंने ये तुम्हें दिये थे
और तुमने एक वसन्त की तरह
इन्हें स्वीकार कर लिया था
दिन और वर्ष सब झर जायेंगे
और ढँक लेंगे उस राह को
जिस पर तुम्हारे अंगों से
गिर पड़े थे फूल,
फिसल गया था बादल,
और उझक पड़ी थी धूप,
तो कहीं लिखा नहीं जायेगा कि
मैं उन्हें बटोर लाया था
पतझर के पहले पत्तों सा
और फिर देख सका था तुम्हें
उनसे सजा-सँवरा
एक वसन्त की तरह—

१६५६



सुबह

चेहरा खो गया है
रात मे परछाइयो के बीच
लोगो मे
चेहरा वह
हरी हरी पत्तियो मे घिरा
एक थका-कुम्हलाया फूल
डाल से जुडा
चेहरा वह

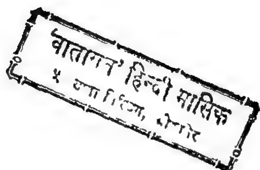
सुबह का आकाश चुप है
कुहरे मे डूबे अदृश्य के
तल से उभर
झिलमिला गया है
एक हरा पेड
—चेहरा वह ?
चेहरा खो गया है

१९५६

स्मरण नागफनी

तेरे स्मरण का असीम सुख मुझे
कि कांटा भी फूल आया मेरे बगीचे ।

१९६०



साँझ

साँझ
साँऽ झऽ
हर चेहरा विदा है—

■

दु:ख तेरे होने का

आत्मसमपण के क्षण मे
जव तू फूट-फूटकर रो उठती है
अपनी करुणा से घिर कर,
—तो जानती है मुझे क्या देती है तेरी आखे,
तेरे अनावृत उरोज और सिहरता कनकतन
एक दु ख तेरे होने का,
और होकर प्यार करने का,
और प्यार कर समर्पित हो जाने का।
फिर मै तुझे कामना से नही देख पाता
क्योकि आसुओ मे डूबकर तू इतनी अधिक मेरी हो जाती है
कि मुझे सुन्दर और अस्पृष्ट और अक्षत लगने लगता है
मेरी बाँहो म समाया तेरा वचपन
जिसमे तू रोती है
और जो दु ख देता है
तेरे होने का—

१६६०



अवधि

हमारे शरीर एक सौन्दर्य की रचना मे गुँथे हो
तो मैं तुझे होने दूँगा तब तक
जब तक तू तृप्त न हो ले
और मुझे करुण न होना पडे—
बँधा रहने दूँगा अपने चुम्बन मे तुझे
तब तक
जब तक तू उस अनुभव मे जीवन्त रहे
और मुझे क्षमा न करना पडे—
—वैसे ही जैसे तुझे रहने दूँगा कपडो मे
तब तक जब तक तेरे शरीर को
अपनी वासना से सुन्दर और उत्सुक नही कर लेता—
तब तक होने दूँगा तुझे



प्यार करने के लिए

जब प्यार से नही करुणा से
तू मुझे बुनती है
अपने मन-चाहे रूपाकारो मे
तब मैं भी नष्ट नही होता
और न ही खो पाता हूँ
मेरे मन्दिर-शिखर, प्रार्थना-गायन,
सुमन-गन्ध के बीच भी
स्पष्ट रहता हूँ
कि तू मुझे बाद मे पहचान कर
प्यार कर सके, एक निराकुल भाव से,
और करुणा को भूलकर भी
मुझे समृद्धि दे सके—

६०



कहाँ होती है दुनिया

कहाँ होती है दुनिया उस समय
जब मैं तुझे अपने सारे अंगोसे थाम लेता हूँ
और एक तृप्ति मे स्थिर कर देता हूँ
तेरा सौन्दर्य ?
जब हम सुन्दर होते हैं
अपने शरीर के उस विह्वल गुम्फन मे
कहाँ होती है दुनिया उस समय
उसके वे क्षुब्ध पिता और पागल-परेशान भाई
क्यो उस समय दफ्तरो या क्लासो मे
काम करते होते है,
और क्यो सिर्फ हमारे लिए सुरक्षित छोड दिया जाता है
हल्की धूप से उजला सुनसान,
खिडकी के बराबर आकाश का एक नीला टुकडा
और एक उत्तेजक दोपहर ?
कहाँ होती है दुनिया उस समय
जो बाद मे मोड पर मिलती है—परेशान
पर हमे अपमानित करने को तैयार,
अपनी-अपनी पत्नियो से अतृप्त अनुभवी बुजुर्गों की
बदहवास और हितैषी दुनिया
कहाँ होती है उस समय ?
—जब हम सुन्दर होत हैं
एक उत्तेजक दोपहर मे
अपने शरीर के उस विह्वल गुम्फन मे

१९६१

अपने शरीर से कहने दो

पृथ्वी का दूसरा भाग प्रकाशित है—
एक हलकी गूँज मे डूबा हुआ
यहा है सिफ अन्धकार
आभा है तुम्हारे अस्पष्ट नेत्रो की शान्ति मे
या उँगलियो के तृप्त छोरो पर
जीवित शब्दो से दीप्त मेरे अधरो पर ।

शान्त
अनुरक्त इच्छाओ की असीम विकलता है
आकाश के खिलते हृदय मे—
और खिडकी-दरवाजो दीवारो से सीमित
एक निजी अँधेरे म मुग्ध है हम

बाहर ससार और उसके रात-दिन है,
घूमने दो पृथ्वी को
उसको धूप और अन्धकार के साथ,
हवाओ को अविदित बहती चली जाने दो,
पर इससे पहले
कि चेहरे खिडकी से झाके,
दरवाजे के पीछे से आहट ले,
या अपनी स्मृति से विघ्न डालें
वह जो तुमसे कह चुका हूँ
तुम अपने शरीर से कहने दो—

१६६१

■

खुल गया है द्वार एक

जबसे तुमने अँधेरी उत्सुक देहो को
एक उज्ज्वल गुम्फन मे कुसुमित होने दिया है
खुल गया है द्वार एक भविष्य मे—
जब किसी उत्तेजना की धूप मे
ठहर जाते है हमारे हाथ
हम उस द्वार को छू लेने को बढ रहे होते है,
और जब तृप्त होते है
किसी आत्मीय आकाशमे दीप्त होकर हमारे चेहरे
तब तुम्हारी बाँह
एक खुलता खुलता पथ है
जो उस द्वार तक जाता है
और मेरा हृदय उस पर झपकता हुआ
एक नीला तारा
जो धीरे-धीरे गाता है—

१९६१

सुनो

"इन यू ऐट एग्री मूमण्ट, लाइफ़ इन अबाउट टु हैपन"
—अकनर्ता द' लासेर्दा

१

सुनो अपने हाथ दो
सुनो अपनी बाह दो
सुनो अपने नयन दो
सुनो अपने होठ दो
सुनो यों थको मत
पसीजो मत
सुनो, सुनो यों ऐंठो मत

सुनो फूटो मत
धार-धार हो बहो मत
सागर तुम हो
नदी की सीमा
जो मेरी है, गहो मत
सुनो—

सुनो जो फिर एक छोटा उदय चमकेगा
उसे नाम मैं दूंगा
कल खिलेगा तुम्हारा टहनियों पर
फूल वह,

वह सोनल शस्य तुम्हारा
उसे नाम मैं दूँगा
सुनो--
सुनो अपने हाथ दो--

२

सुनो अगर उदय की प्रतीक्षा विफल थी
तो क्या
तुम फिर हाथ दे सकती हो
बाँह दे सकती हो
सुनो अब भी सूखी टहनियो पर
चमकता है वह हलका आलोक-जल
अब भी ठहरा हुआ है
उत्सव-स्पर्श वह
सुनो अगर शस्य की
प्रतीक्षा विफल थी
तो क्या--

अन्त तक

उस क्षण तक जीने देना मुझको
जब मै और वह प्रियवदा
एक डूबते पोत के डेक पर
सहसा मिलें।
दो पल तक न पहचान सकें एक दूसरे का,
फिर मै पूछूँ
"कहिए, आपका जीवन कैसे बीता ?"
"मेरा आपका कैसा रहा ?"
"मेरा "
और पोत डूब जाये।

१९५७



शामें गुज़र जाती हैं

किसी पेड से एक एक कर
झर जाने वाली पत्तियो की तरह
शामे गुज़र जाती हैं
और लोग कॉफी हाउसो, पार्कों,
सिनेमाघरो या स्टेशन से
कुछ-न कुछ कर लौट आते है
और जो नही आते
वे पार्क की बेंचो पर
या अँधेरे किसी भी स्थान पर
या तो प्यार करते हैं या व्यभिचार
—या ऐसा ही कुछ।
और मै भी लौट ही जाता हूँ
उस सडक से
जिससे आता या जाता रहा हूँ
पर जो मुझे कभी कही ले नही गयी
मै लौट आता हूँ तुम तक
पीला और चुसा
और तुम भी लौट आती हो
रूखी और कठोर
उन कमरोम-से कही से
जिन्हे हम एक दूसरे के सामने
घर कहते हैं
शाम गुजर जाती हैं

हमे नही मालूम कि कब और कैसे
खिडकी से दिखने वाला
आकाश का नीला टुकडा
जलकर काला पड जाता है
हमे नही पता कि कारो और बसो
रिक्शा और ट्रामो
इमारतो, अनगिनत लोगो औरे भीडो
चक्करदार और लम्बी
और भरी-भरी सडकोके बीच
जो अभी-अभी बचा है
गिरते या कुचलते या मरते
वह कौन है
मैं या तुम या कोई और
मै सिर्फ लौट आता हूं तुम तक
तुम सिफ लौट आती हो मुझ तक
और शाम गुज़र जाती है
किसी पेड से एक-एक कर
झरने वाली पत्तियो की तरह
धीरे-धीरे

१६५८



रक्त में डूबी

तुम दूसरो की कविताओ के पास
चुपचाप बैठी हो
और मै रक्त म डूबी एक सहमी पदचाप सुन रहा हूँ
पास आते,
—और पास आते ।
तुम्हारी उँगलिया खाली नही हैं
और न वुनती हुई व्यस्त है
तुम्हारी उँगलियो से न कविताओ का भविष्य बँधा है
और न मेरी कोई पहचान
न किसी सूर्योदय की परछाई
तुम्हारी उँगलियो से उँगलिया बँधी है
हाथ बँधे हैं
और मै रक्त म डूबी एक सहमी पदचाप सुन रहा हूँ
और पास आते हुए

कितनी शामे थी
जो अपनी देहरी पर घुटनो से मुँह लगाये
पूरब-आकाश ताकते
मेरे बचपन के एक बीमार दोस्त की
आँखो मे ठहर गयी थी,
उन्ह लेकर खो गया वह, वही पर एक रात की तरह
और अब मै तुम्हे देख रहा हूँ
उसी तरह, दूसरो की कविताओ के बगल मे चुप,

सिफ रक्त मे डूबती-डूबती पदचाप है
जो मुझे सुनाई दे रही है
तुम्हारी उँगलियो मे उँगलिया हैं
हाथ हैं
पर तुम्हारी आखो मे
एक अकेला पुराना दिनान्त

१६६०

■

भिलाई मे

जहाँ लोहे के लम्बे फँले जलते हाथो को
यन्त्र एक अमानवीय आवाज़ के साथ काटता है
वहा भी मैं गहरी नीद म सो जाऊँगा
और बिना किसी दु स्वप्न मे फँसे
सहज भाव से जाग सकूँगा——
और किसी मुद्रा या मधुवचन से अनाक्रान्त रहकर भी
तुझे याद रक्खूँगा
एक अन्तहीन ग्रोष्म मे भुला दूँगा ऋतुक्रम
पर पहचान लूँगा उन सुगन्धित दिनो को
जब मेरी वाहो म
तेरा अक्लान्त लावण्य खिल आयेगा
एक मरणान्तक शोर होगा चारो ओर
और मेरा हृदय
गले हुए आलोक-स्फुरित लोहे की तरह
असख्य मार्गोसे तेरी ओर बहता रहेगा
जिसे मनचाहे सुखो मे
तू ढालती रह सकेगी——

फिर एक रात जब
इस्पात की तरह भारी होने लगेगा
तेरा रक्त और तेरा हृदय और तेरा प्यार
तब मैं
लोगो और कोयले को ले जाती रेलगाडियो के नीचे से

और सोये हुए नगरो पर पहरा देती बत्तियो के पीछे से
तुझे आवाज़ दूँगा ।
काले भारी भय की तरह स्तब्ध होगी पृथ्वी
और मृत्यु की तरह नि स्पन्द छाया हुआ होगा
आकाश
मेरे असख्य अश्व तेरी प्रतीक्षा करेंगे
यन्त्रद्वारो के पास—

१९६१



मुझे घृणा करने दो

या ही चुप रहो,
और मुझे घृणा करने दो—
हरेक बस को पछियाती चली जाती है एक और बस
एक काले चाद तक
अँधेरी गलिया मे पवित्र प्रकाश की तरह
टिमटिमाती है मृत्यु,
नगर धडकता है डूबते हृदय-सा,
यो ही चुप रहो
और मुझे घृणा करने दो—

गुर्राहट है, चीख है, शोर है
वह जो कभी सगीत था युवा अधरो पर,
चेहरे बनने की करुण चेष्टा म बिखरा
चीजो का एक विषम ढेर है,
यो ही चुप रहो
और मुझे घृणा करने दो—

मौन के आभामय आकाश मे
यो ही रहो, प्यार से पीडित
अपनी कामना मे ज्वलन्त,
और मुझे टूटी हुई सीढियो
छप्परहीन मकानो
और सडे हुए पेडो मे से

अपनी घृणा में गुजरने दो
हवा में एक विषाक्त धुँआ है
मुझे घृणा करने दो
खोजने दो हाथ वे
जीवन की पवित्र आग

जिनम––
अब भी कांपती हुई दीप है
यों ही चुप रहो, घृणा करने दो
लौटने दो फिर तुम तक
तब तुम्हारे अबोध हाथ
उस आग को थामे होंगे––

यों ही चुप रहो
और मुझे घृणा करने दो––

१९६१

अन्त

मेरे जन्म से पहले मर गयी थी
देवताओ की बूढी दुनिया,
और मैंने अपने बचपन से आज तक
बिना समझे सुने हैं
इस रगारग दुनिया के समाप्त होने की
कथाओ के आखिरी हिस्से—
मैंने कभी नही चाहा कि इसे बचाऊँ
या अपने ढग से बदलने मे भिड जाऊँ,
मैने कभी इसके लिए लडना नही चाहा
क्योकि मैं हथियार चलाना नही जानता
और लडने मे ऊब होती है,
और मैंने प्रार्थना करना भी नही सीखा
मैंने दुनिया का कभी कुछ नही जाना
सिवा अपनी मा की अक्लान्त करुणा
अपनी प्रेमिका के निबिड प्यार के,
मैंने कभी नही जाना कि
कुछ और भी है जो जाना जा सकता है
और ऐसा भी हुआ
कि कभी-कभी मेरी अबोध आंखो मे
एक धैर्य आ गया
और मैंने रातो के पीडित गर्भों म
आकाश को चीख कर रोते
और मरे हुए देवताओ को अपनी लौह करुणा मे

विकल होते देखा
और ऐसा भी हुआ
कि कभी-कभी मेरी भुरकस आत्मा मे
एक शक्ति आ गयी
और मैंने दिनो के प्रखर तेज मे
आकारो और चट्टानो को
रक्तिम प्रसवसगीत मे
किलककर नाचते देखा
और अब ऐसा हुआ है
कि मुझे मालूम हो गया है
कि उस अनिवार्य अन्त मे
जब मै मरूँगा, हम समाप्त होगे
तो हमारी पडोसी चीज़ो के ढेर
हिलकर मानवीय हो उठेंगे
और हमारी मृत्यु
चीज़ो के लिए एक सौन्दय होगी

१९६०

■

हरी दीवार   एक पुरानी परिचिता के लिए

दीवार थी और हरी
और प्रार्थना-पुस्तक के एक साफ पन्ने-सी
खिड़की के सामने चुपचाप खड़ी

तुम आकाश का संगीत सुनती थी
या सूरज का वसन्त देखती थी
या आकाशनीम के मिथुन को ताकती थी

तुम्हारी आँखें   धूप के दो जले हुए टुकड़े
और तुम धूप मे गिरता हुआ एक पुराना खम्भा
और धूप हरी दीवार पर अँधेरे डालती हुई
और हरी दीवार सामने खड़ी हुई
प्रार्थना-पुस्तक के पन्ने-सी
और गाती हुई शोकगीत
तुम्हारे लिए

एक अपंग बच्चा अपनी दालान से
दीवार पर गेंद मारता है
तुम देखती हो !
एक झुका बूढ़ा आकर
दीवार के सहारे धूप खाता है
तुम देखती हो !

१९५९

ठण्ड की एक शाम   एक पागल औरत

मै कही जाना चाहती हूँ
मैं एक बँगले मे घुस आयी हूँ
उसकी रोशनी की तरफ खिचती हुई
चार-छह लम्बे पेडा के अँधेरे मे-से घुसकर
मैने कमरो म एक चीख भर दी है
और एक बच्चो को डरा दिया है
चाय पर बैठे लोगो को चौका दिया है
और नौकर को घबरा दिया है

वच्ची डरी हुई है   लोग चौके हुए हैं
माँ परेशान है, और नौकर मुझे मारकर बाहर
ठेल रहा है

और मै चिल्ला रही हूँ
कि मैं कहा जाऊँ
मैं कही जाना चाहती हूँ
अहाते से बाहर आसमान है,
पेड है, बत्तिया हैं
और बँगले से लौटता मेरी याद से सहमता
एक युवा कवि है
आसमान के पास दिन नही है
पेडा के पास बाहे नही हैं
और बत्तियो के पास भाषा नही है
जिसमे बात कर सकूँ
मेरे पास एक दिल है

जो किसी बच्ची के साथ रहना चाहता है
मेरे पास दो बाहें हैं
जो लोगो को घेर लेना चाहती हैं
मेरे पास भाषा है
जो किसी युवा कवि के हाथो रचना चाहती हूँ
और
मैं कही जाना चाहती हूँ

१६५६

दस वर्ष बाद बालसखा से अचानक भेंट*

एक पीला पुराना दिन अचानक मिला
उसके पास न उसकी पहले की धूप थी
और न पिछले पड़ो की कतारें,
सिर्फ एक गीला आकाश था
उसकी पुरानी पहचान—
मैंने उसे पहचाना और वह
और भी गीला होकर मेरे कन्धो पर झुक आया।
और मेरी आखो म वह पुरानी धूप
और पेड़ो की सैकडो परछाइयाँ आ गयी,
उसकी दुबली बाँहो के पास
कही कुछ चिडियो के बचपन की आहटें अब भी रुकी हुई थी
और सूय के वसन्त के पहले उजाले मे
सीढियो के एक लम्बे सिलसिले पर
फिसलते पैर और सहमते हाथ अब भी ठहरे थे
उसके हाथो मे, उसके पैरो के पास,
बरसात की कुछ पुरानी धुनो मे बुदबुदाते होठ थे
और ढलती दोपहरी मे झरते फूलोके अँधेरे
और बादलो की रोशनिया

एक पीला पुराना दिन
बचपन की अनभ्यस्त उँगलियो से खिंची
कुछ टेढी लकीरो म सहमता।

---

* राजकुमार तिवारीके लिए

अपनी आकाश आँखो मे
दो सूर्य डुबाये हुए
अपना भी   मेरा भी—
अचानक मिला
वह पीला पुराना दिन
मुझे

१९६०

■

'कुछ कविताएँ' पढकर*

दरवाजे पर दस्तकें हैं
और खिडकी पर अचानक खिल आया है
एक फूल
परछाइयाँ चीरकर आयी आवाजो का
एक चेहरा है

शामो के डबडबाये हुए दिल हैं
और आकाश का सिमटा हुआ रग
लोगो के पैरो की नरम-नरम आवाज़े हैं
और उनमे से झाँकता हुआ एक चेहरा

बरसात मे घुला गुलाब
एक लय है
—जिसे खिडकी ने सुना है
और वह सिर्फ हलका सोनल उजाला है
जिसे मैने देखा है

१९५९

■

*श्री शमशेरबहादुर सिंह के लिए

हुसैन के एक चित्र की अचानक याद

उजाले की दो गहरी लाल आखें
मुड गयी उस सडक पर
जो मेरे घर के अंधेरे के पास से
        गुज़रती है
तालाब पर सोये धुन्ध मे
        खिलखिलाकर एक भूरी हँसी
हँसता है कोई
पेडो की अँधेरी कतारो के शिखरो पर
        हँसता है कोई
घिरता जाता है आकाश—काला
        —घर मेरा उभरता है, डूबता है
अंधेरे मे, सडक पर,
गहन लाल आँखो मे छूटकर
एक मद्धिम पीली रोशनी मे लगातार

१९५६



अली अकबर खाँ का सरोद वादन १

खिडकी से एक पीला गुलाब रह-रहकर टकराता रहा
वही वह झुकी खडी रोती रही
मै सुनता रहा
        कोई अपनी उँगलियों से
        कापता–काला आकाश
        मेरी ओर खीचता रहा
        खीचता रहा—

१९५६

८

अली अकबर खाँ का सरोद-वादन २

(रेडियोपर, वसन्तकी एक मद्धिम रातमें)

सीढ़ियों पर सहमकर चिपटा रह गया
एक हाथ

(वादन समाप्त होनेपर अनुल्लेख)

वसन्त का उजाला
पीला और धीमा
और उसमें खिलता-काँपता
चट्टानों और फूलों का एक सोनल आकाश
मैंने पलट कर पीछे देखा—
—वह थी
पीछे आती हुई
पर यकायक घुल गयी
परछाइयों के बीच—
रह गया वहीं का वहीं
एक दिन का उत्सव,
उसका कुहरा, उसकी सुबह, उसकी धूप
और उसके तोतों की हरी लकीरें।

1

सीढ़ियों पर सहमकर रह गया
एक हाथ

उँगलियो से फूट-फूटकर बहता रहा
उजाले का एक नरम बहाव—
सहमकर रह गया एक हाथ



खजुराहो जाने से पहले

पत्थर सिर्फ पत्थर नही चेहरे होगे
चेहरे सिर्फ चेहरे नही लोग होगे
लोग सिर्फ लोग नही पत्थर होगे

मैं कौन सी आवाजें ढूँढूँगा
पत्थर की उन आकृतियो मे
जो चुप रहेगी कविताओ की तरह—
आवाजो की इस बहुत बडी दुनिया मे
पत्थर भर है—जो चुप है
और मरे है या जीवित हैं,
मैं जो आवाजो को प्यार करता हूँ
उनसे घिरा हूँ
उनसे अपना छोटा सगीत बुनता हूँ
मै वहा कौन-सी आवाजे ढूँढूँगा ?

मेरे लिए तो सब नये होते हैं
और सब खोये हुए
और सब चुप
मै सबको अपने लिए खोजता हूँ,
पाता हूँ—आवाजो से घेरता हूँ।

क्या मैं भी पत्थर की ओर लौट रहा हूँ ?

गुलाबों और अँधेरों में से
संगीत में से
क्या लोग सिर्फ पत्थर की ओर लौटते हैं ?

१९५६



वसन्तगीत

यहाँ से गया था वह
घास के कपड़े पहनकर
और उसकी आखो मे एक पूरा आकाश था
यहाँ से लौटा था वह
अपने पुष्पित नगे अग लिये
और उसके मन मे एक पूरी धरती थी।

१९५९



हरियाली देखकर

ये बड़े हाथ छोटे हों
मेरी कड़ी गदलियाँ नरम बनें
यह हरा-हरा-सा जल
थोड़ा सा पी लूँ मैं,
अपनी फूलों-बनी नाव
फिर सोचूँ
अगर बहा दूँ
कब तक, कितनी दूरी तक तैरेगी
हरे-हरे-से जल में।
ये बड़े हाथ छोटे हों—
मेरी कड़ी गदलियाँ नरम बनें।

१६५८

■

वर्षान्त

वर्षान्त किसी की प्रतीक्षा नही करता
मेरी या तुम्हारी।

हरे-हलके बाँसो से
एक दिन अचानक आ
मुट्ठी से अन्तिम बादल वह जाने देगा।

फिर किसी दिन चौंक कर
देखेंगे हम
अरे, यह खिडकी पर
इन्द्रधनुष कौन रच गया है,
किसने ये ढेर हरसिंगार ला धरे हैं ?

वर्षान्त प्रतीक्षा नही करता
मेरी या तुम्हारी या किसी की।

१९५९

■

विदागीत

भागते है,
छूटते ही जा रहे है पेड
पीपल बेर-बरगद-आम के,
बिछुडती पग लोटती घासें,
खिसकती ही जा रही हैं
रेत परिचय की अनुक्षण,
दूरियो की खुल रही हैं मुट्ठिया।
फिर किसी आवर्त्त मे बँध
कभी आऊँगा यहाँ
रेत जाने किन तहो तक धँसेगी
परिचय न चमकेगा कही भी
चुप रहेगे पेड-धरती घास सब
तब मुझे पहचान
छोडता हूँ आज जिसको
टेरेगा सहसा क्या
विदा का वृढा सा पाखो ?

१९५७



ये महज़ एक खयाल है

ये महज़ एक खयाल है
कि मै यहाँ फिर कभी आऊँगा
वैसे कोई बडी बात नही है
और यहाँ के बारे मे तो और भी नही
एक लम्बी-सी सडक है
—कोलतार की
और उसके दोनो ओर
पेडो की वेढब-सी कतारे हैं
बीच-बीच मे आसमान के नीले टुकडे है
और शायद एकाध सफेद बादल भो
वैसे कोई बडी बात नही है
और यहाँ के बारे मे तो और भी नही।

ये महज़ एक खयाल है
कि मैं यहाँ फिर कभी आऊँगा
मै एक सफर के दौरान यहा से गुज़र
रहा हूँ
लगता है दूर कही घण्टे बज रहे हैं
बुलानेवाले नही, लौटानेवाले
जैसे कह रहे हो
जाओ,
गुज़र जाओ
फिर कभी आना

वैसे कोई बडी बात नही है
और यहाँ के बारे मे तो और भी नही।

ये महज एक खयाल है
कि मै यहाँ फिर कभी आऊँगा।

१९५९

सूर्योदय से पूर्व कवि-जागरण

पुरानी लकडी के मेरे मज़बूत दरवाजे पर
एक कमज़ोर और उभरी नसोवाले हाथो की
तावडतोड दस्तक है
और मै जो जागा हुआ
अपने लेम्प के दूधिया प्रकाश मे
दूसरो को कविताओ के पास चुपचाप बैठा हूँ
जानता हूँ
कि बाहर कुहरे मे एक सुबह ऐंठी हुई-सी
सुगबुगा रही है
सडक पर भैसो-भेडो के गुज़रते हुए कई झुण्डो
और शहर आयी घास की पहली गाडियो की
खडखडाहट के साथ—
जिसमे बच्चे और अधेड लपककर दूध लेने जा रहे है
मै दूसरो की कविताओ के पास चुपचाप बैठा
उस दस्तक मे फिर से जाग रहा हूँ
और एक तज़ सगीत सा उसे सुन रहा हूँ

× × ×

मेरी प्रेमिका कण्डे बेचते हुए अभी यहा आयेगी—
मेरा भाई बिस्किट-रोटी बेचता हुआ,
मेरी माँ तरकारी-भाजी बेचती हुई,
और मेरे दोस्त अखबार बेचते हुए,
और मेरे पिता पानी भरते हुए
यहाँ आयेंगे

और मेरे पुराने किस्म के मकान को घेर लेंगे •
मै खिडकी से कूदकर भागना चाहूँगा
और अहाते मे पकड लिया जाऊँगा
लोहे के तारो से, कठचन्दन के पेड से, पुराने दरवाज़े
और परदे ढँकी खिडकियो से, पडोसी वुढिया
और दकियानूस मुहल्ले से मुझे दिन-भर के लिए
वाध दिया जायेगा—
यकायक मेरे दिल को गरमी मिलने लगेगी
एक दुवले हाथ की गरमी
और उसकी तावडतोड दस्तक चुप जायेगी
एक आसमान मेरे सिर पर वैठ जायेगा
और मै चारो ओर धूप फेकने लगूँगा!

१९६०

■

एक आदिम कवि का प्रत्यावर्तन

मैं एक जीवित सभ्यता लाया हूँ, लोगो !

तुमने देखा है सडने लगे हैं नगर और फल
और मरे हुए हैं गेहूँ-धाना के खेत और उछाह
अर्रा कर गिरती हैं पडोस की दीवारें और भिन्नताएँ
टूटते हैं दरवाज़े और बूढे सक्रिय लोग
पडोस एक सडांध देता धुँआ है

मैं एक जीवित सभ्यता लिये दौडा आया हूँ
लोगो—

मेरा चेहरा सोनल नही है
(तुम उसमे लावे की झुलस देखते हो !)
और मेरी हथेलियां भरी हुई
मासल गन्ध डूबी नही हैं
(तुम उनमे चट्टानो को परतें देखते हो !)
और मेरे होठ नही हैं जलते हुए उद्दीप्त
(तुम उनमे डूबे जल-स्रोत देखते हो !)
तुममे से किसी को जब बाहो मे कसूँगा मै
तो लोगो तुम जानोगे
कि मुझमे मासपेशियो की उत्तेजना भी नही है
मुझमे नही है मास की घाटिया
और तेज रक्त-झरने
मुझमे चट्टानें हैं सिर्फ

हड्डियो की
लोगो, मैं इन्ही हड्डियो को
एक जीवित सभ्यता लाया हूँ

लोगो, यह आकाश तुम्हारे कन्धो पर
वस्त्र-सा पडा होगा
और जहा नही हैं
वहा भी देखोगे तुम फूलो के अनगिनत अग्निवन
लोगो, मै लदी हुई डालें और जीवन्त पत्तिया लाया हूँ
लोगो, मैं आया हूँ
लोगो, तुम हँसे थे—धरती अन्दर काप गयी थी

तुम रोये थे—घाटिया पिघल गयी थी
तुमने गाया था—झीलो पर कुहरा घिर आया था
लोगो मै सभ्यता का काव्यमुख लाया हूँ
ये मेरी छाती धरती की याद है
ये मेरी जाघें घाटियो का प्रेम हैं
ये मेरी आँख झीलो का रूप हैं
लोगो, मैं तुम्हारी आदिम हँसी हूँ
मुझमे तुम्हारा वह आँसू सग्रहीत है
मेरा हृदय डूबा है
तुम्हारे उस आदिम सगीत मे
तुम्हारी आँखो मे
तुम्हारे होठो पर
तुम्हारे कण्ठो मे
मै लौट आया हूँ
मै रक्त नही मास नही
हड्डियाँ हूँ तुम्हारी

असत्य जड ऋतुओ के गर्भ से
मैं एक पुरातन सन्तति हूँ
एक जीवित सभ्यता लाया हूँ,
लोगो, मैं आया हूँ—

लोगो, यह आभा हड्डिया का सूर्योदय है
लोगो, यह छाया हड्डियो की तितलियो का घेरा है
लोगो, यह प्रेम फूलचेहरा पर मेरी हड्डियो की छाप है
लोगो यह जीवित सभ्यता है
जो लाया हूँ

लोगो मैं आया हूँ—

१९६०

कवि-वक्तव्य

हम सब दुपहर के एक सगीत म
छुपे हैं—
और लोग हमे
सडको म, कमरो मे,
आफिस मे, पार्कों मे
और होटलो मे झीखती भोडो मे
खोज रहे हैं—
हम सब एक सगीत की लय मे
उसके सुरो मे लिपटकर दुबके हुए चुप है—
और लोग हमे एक आकाश के नीचे
सूने पेडो और
रूखे टीलो के दृश्यो मे
खोज रहे है—
लौटेगे
हम
लौटेगे हम
वह निष्कम्प ऋतुशिखा देख
वह,
जिससे ज्योतिया चुराकर
पत्ती-पत्ती फूल जलाता फिरता है वसन्त
लौटेंगे हम
तितलियो की तरह नये शब्द लिये
और ये लोग

यह धूप
ये सडकें
ये दृश्य
डूब जायेंगे शाम के एक मद्धिम सगीत मे
हम लौटेंगे—

१९५९

■

लोगों के बीच से एक यात्रा

घर है और बेहिसाब है
और लोग भी बेहिसाब है,
हैं और मैं उन्हे रोज देखता हूँ।
खिडकियां और दरवाजे
बन्द हैं या खुले हैं या उडके है।
है और उनके सामने
पेड है कठचन्दन, बकौली या नीम
या बेल है एकाध—
जिनमे फूल है,
अन्दर भी घरो के फूलो के गुच्छे हैं
बच्चे या औरतें।
हैं और मै उन्हे रोज देखता हूँ।
मन्दिर के पास से गुजरती सडक पर
बत्तियो के खम्भे और रोशनियाँ है।

इस तरफ एक अधबना स्कूल है
और पास ही फैले तालाब पर
डूबता सूरज, झुकता आकाश, बिखरे बादल,
लौटते पक्षी
एक बिलकुल पारम्परिक चित्रकृति बनाते हैं
और मै उस तरफ बहुत कम देखता हूँ,
देखता हूँ इधर, जहा स्टैण्ड या बिजलीघर है
घरघराता

और लोग हैं हमेशा की तरह प्रतीक्षा मे
बसो की
या मूँगफली चबाते हुए, गप मे डूबे ।
अस्पताल की ऊँची टेरेस से झाकते चेहरे
हमेशा पीले या बीमार नही होते ।
चेहरे जो डूब जाते हैं
और तब उभरते है
जब उनकी पहचान खो जाती है—

लोग है और उन्हे रोज देखता हूँ
पर मेरे और उनके बीच एक मौन है
जिसमे मै बोलता हूँ और चिल्लाता हूँ
कविताएँ ।

पर पहचानता नही हूँ, उन्हे जो
मौन के दूसरी ओर हैं
हैं और मै चाहता हूँ
कि मै जो बोल रहा हूँ, चिल्ला रहा हूँ
उन तक पहुँचे
स्वतन्त्र, मौन को कुचलकर, मुक्त
वे मेरे पास हो
और उनके चेहरे म जब चाहूँ,
सपनो मे देख सकूँ
है, पर उस ओर हैं
और मौन हैं और मैं हूँ ।

सब के सब तोड नही पाते
वह—जो बीच मे है,

न मैं और न शायद वे।
हैं और मै उन्हे रोज देखता हूँ।
जैसे स्टेशन पर किसी और को विदा देने
भीड आयी है
और मै बिलकुल अजाने
उसे हाथ हिलाकर छोड रहा हूँ।

है और उन्हे रोज देख रहा हूँ
उस ओर मौन के सिर्फ देख रहा हूँ—

१६५६

■

लोगों का त्यौहार

लोग होंगे
रंगीन और उजले कपड़ों में मढ़े हुए
सस्ती चीज़ों से अपनी खुशियाँ मनाते
लोग होंगे
फूट-फूटकर उमड़ते हुए
सड़कों पर
हर अगले आदमी को धकाते
चखचख करती औरतें होंगी
और खो-खो जाते बच्चे
और रखवाली करते धूप-खाये
लोग होंगे
चीखती चिल्लाती अनगिनत आवाज़ें होंगी
और मेरे होठों पर जागेगा
एक प्यारा-सा हलका संगीत
और मैं थिर रहूँगा
एक धमनी की तरह
और लोग मुझमें से गुज़र जायेंगे
अँधेरे के लोग और उजाले के लोग
और लोगों का त्यौहार
और उनकी भीड़ें और उनके तमाशे
उनकी चिल्लाहटें और उनके कीर्तन
और उनके देवता और उनकी झण्डियाँ
मुझमें से सब गुज़र जायेंगे

और थिर रहूँगा
एक धमनी की तरह
लोगो के कदम सडको पर नयी इबारतें लिख देंगे
और नये सवाल
और पिछली बार के कुछ हल
और इस शहर के डूबते दिल को
खून के चार-छह कतरे और मिल जायेंगे
और रोशनियो को कुछ और तसवीरे उभर आयेगी
मै थिर रहूँगा

लोग पिचके हुए गुब्बारो की तरह
घरो के बेरहम हाथो मे फिर वापस लौट जायेंगे
और सडकें साल-भर के लिए फिर मर जायेंगी
—औरतें फिर पानी भरा करेगी
और बच्चे फिर पेडा पर चढा करेंगे
और मकान लोगो की चुटकिया बनाकर फोडा करेंगे

मुझमे से होकर गुजरते रहेंगे लोग
और उनमे कही मेरा खोया भाई भी होगा
कही मेरी आनेवाली बहन भी मचलती होगी
और उनमे कही मेरी माँ भी होगी
आनेवाले बच्चे की आभा से पोली अलसायी
और मैं थिर रहूँगा
एक धमनी की तरह

लोग सूरज को अपनी आखो मे कैद कर
अपनी अँधेरी खिडकियो पर लौट जायेंगे
पर एक नया पुल ज़रूर बनता रहेगा

—अगले त्योहार तक
हँसी के ऊपर, चुम्बन के ऊपर, आसू के ऊपर
शाम के ज्वार पर खिलते गुलाबो के ऊपर
लोग चिल्लाते रहेगे
पुकारते रहेगे
उनकी आवाजे एक मौन मे ढलती रहेगी
और मुझमे से गुज़रते रहेगे
और थिर रहूँगा
एक धमनी की तरह

१५६



एक छोटा शहर

मै देखता हूँ इस धूप को
और इस सडक को
साथ-साथ जाती हुई
उस मैदान तक
जहाँ सहमी सडक एकदम फैल जाती है
और बिखर उठती है दुबकी धूप
पर जहा या तो बच्चे होते है
खेलते हुए
या बूढे, प्रार्थना करते हुए
और मै नही होता न वहा और आस-पास कही--
मै देखता हूँ इस धूप को
और इस सडक को

धीरे चलनेवाली एक बेहद गन्दी ट्रेन
रुकती है स्टेशन पर और
इतना धुआँ छोडती है कि देख लेता हूँ
या इतनी जोर से चीखती है कि मैं जान लेता हूँ
लोग उतरते ह
बहुत साफ दिखने की कोशिश करते हुए
और उन्ही मे कही
छोटे कद और मोटे होठोवाला मै भी
और इधर दरवाजे पर या छत से

मैं प्रतीक्षा करता हूँ उस ताँगे की
जो मुझे घर ले जायेगा
भूरी-काली सडको के कई मोड घुमाता हुआ

मैं अपनी जेब मे एक शाम लिये घूमता हूँ
और जब लगता है कि कॉफी पीना चाहिए
या उस सडक पर चल देना चाहिए
जिसके दोनो ओर पेड ही पेड हैं
इतने-इतने और इतने सुन्दर
और जिस पर अफसरो की या ईसाईलडकियाँ सडक घेरकर
चलती हैं, खेलती और मुसकराती हुई
या जब मैं किसी गीत की लय याद कर
उसकी किसी पंक्ति का भूला शब्द छोडकर
एक नया गढना चाहता हूँ
तब जेब मे हाथ डालकर छू लेता हूँ
उस शाम को
और महसूस करता हूँ
प्यार-जैसी कोई चीज़——

रोज़ कोई न कोई मुझे गढना चाहता है
रोज़ मैं मिट्टी के महकते लोंदे-सा
किन्ही हाथो म होता हूँ
और रोज़ लौट जाता हूँ या फेंक दिया जाता हूँ
परदा, खिडकियों और मेज़ो के बीच
कठोर पत्थर बनाया जाकर
जिसे तराशना या गढना उन हाथो ने नही सीखा है
रोज़ फिर भी कोई-न-कोई

कही कोई गिटार नही बजाता
और न ही किसी भी खूँटी से लटकती है उलटी वायलिन
फिर भी एक सगीत
लोगो की अपूर्णताओ को ढाकता रहता है

बच्चे कागज के हवाई जहाज के अलावा भी कुछ हैं
और लोग भी
दूकानो-छतो-गलियो मे खिची लकीरो से बहुत कुछ ज्यादा
कुछ बदलता नही है कही भी
लोग सोचते भर है कि बदला है
आधा चाँद लेकर भी लोग खुश होते है
और मेज पर, बैठकखाने मे उसे सजाते हैं
और खुश होते है
गो कि लकीरो से बहुत कुछ ज्यादा हैं वे

सडके उतर-चढकर खो जाती है
पेड एक विदेशी लैण्डस्केप बनाकर बुझ जाते है
चुप दूर तक दौडकर थक जाती है
मकान और चौराहे
फिल्म के सूने सेट से भरे और खाली और छोटे लगते है
आकाश जहा से दिखता है
टुकडो मे नही पूरा दिख जाता है
और सडक के किनारे को बत्तिया तभी जलती है
जब चाद नही निकलता
और मै
जैसे एक समुद्र से एक रात से
एक खोह स निकलता हुआ आता हूँ

और डूब जाता हूँ
ठण्डे भोजन कुनकुने दूध
अखबारों और पुस्तकों में
एक असहाय बच्चे सा

१९५९

■

एक कविता-क्रम

स्वतन्त्र रूपसे लिखी गयी सम्बद्ध कविताएँ।

१ पराजित

वह मुझे पहचानता नही था
और मै उसके पास जाना चाहता था——
जब किसी ठिठुरती रात मे
वह किसी ढाबे मे भूख से व्याकुल
गोश्त की बोटियाँ चूस रहा होता था
मै दूर बैठकर देखता था
उसके चेहरे पर धीरे-धीरे प्रकट होती तृप्ति
——वह तब अपना अकेलापन पसन्द करता होगा
अपने शरीर को सुखद गरमी के साथ—
उसके पास पहुँचने की तब कोई आशा नही हो सकती थी
और तब भी नही
जब वह अधीरता से
डाकिये की प्रतीक्षा करता था
क्योंकि उसे बताया नही गया था
और उसे मालूम नही था
तब वह इतने गहरे होता था
कि उससे मिला नही जा सकता था
फिर मुझे एक रात पता लगा
तो मै दौडता दौडता उसे खोजने चला——

कुछ लोगों की भीड़ में शान्त वह आ रहा था
अपनी माँ का अस्पताल से मरघट पहुँचाकर
मैंने देखा—
वह अपने सूखे होठों पर बार-बार जीभ फेर रहा था
इसकी आँखें दूर सड़क के मोड़ पर टिकी थीं
सबके पार
वह अब बिलकुल अकेला था
यह अन्त था
मैंने उसे खो दिया
और असफल ईश्वर के पास लौट आया
जहाँ मुझे मालूम है
वह कभी नहीं आयेगा।

१९६२

२ ईश्वर

मैंने उसे देखा नहीं था
पर अँधेरे में भी परिचित उस सड़क पर जाते हुए
उसे साथ चलते मैं अनुभव करता रहा था।
—जब सामने से आती किसी कार की रोशनी से
मैं छिप जाता था
पहचाने जाने के डर से
तो कहीं बहुत पास सुनाई दे जाती थी
एक संगीत-चाप—
और फिर मैं जब मकान में घुसकर
अपनी घबराहट और उत्तेजना में
सीढ़ियों पर लड़खड़ा गया था

तो मुझे लगा था कि उसने मुझे सँभाल लिया है।
कमरे के सुगन्धित अँधेरे मे
वह विभोर थी प्रतीक्षा मे
चुम्बन मे बँधते
हमने कृतज्ञता अनुभव की थी
कि वह कमरे के बाहर कही
रखवाली कर रहा है।
धीरे-धीरे जब हम उसे भूल गये
एक दूसरे मे डूबते
हम जब विह्वल होकर
खोजने लगे भविष्य मे खोये अपने शिशु का चेहरा
तो दरवाजे पर एक दस्तक-सा खटका हुआ
मुझे लगा
शायद कोई जाग गया है
और वह हमे सचेत कर रहा है--
जल्दी से उसे अन्तिम चुम्बन देकर
जब धीरे से मै बाहर आया
तो धुँधलके मे
मैंने देखा--मैंने पहली बार उसे देखा
उसका काला-दुबला-सा शरीर हाँफ रहा था
एक पिचके चेहरे मे आँखें नीचे झुकी थी
उसके हाथ मे शायद करताल थी
डण्डे, गँडासे और झण्डे लिये खडी एक भीड के पीछे
खडा था वह
और उसके पीछे
दूर कही
भोर का संकीर्तन था।

१९६२

३ सम्भावना

शहर अब भी एक सम्भावना है
जाडो की एक दोपहर
एक व्यस्त सडक पर
श्वेता के मित्र-हाथो को छूकर मैंने जाना—
मेरे हाथ जरा-सी देर बाद भूल गये
स्पर्श को
और हमेशा की तरह अकेले मेरे पास रह गये।
ट्रैफिक सिगनल पर रुकी हुई भीड मे
कही नही था
मेरे शरीर के लिए कोई अर्थ,
कही नही थी वह शान्त निजी गरमी
जिसे मैं अपना प्रेम कह सकता—
एक हलकी सी अप्रासगिक हवा थी
जिसे झटका-सा देती हुई रुक गयी एक बस
हैण्डल पकडते अपने हाथो को
मैंने दु खी होकर देनी चाही अपनी करुणा
तो याद आये व हाथ,
जो अभी थोडी देर पहले उनमे थे,
उनसे जुडा वह शरीर जो प्रतिफलित हो चुका है
एक और शरीर मे,
और फिर मुझे मिल गये कुछ शब्द
जिन्हे मै वहा रख सकता था
जहा पहले वे हाथ थे—
खिडकी के हवा के ठण्डे झोके से सिहरते हुए

मेरे हृदय मे हाथो के लिए
कविता के लिए
अब एक आशा थी

शहर अब भी एक सम्भावना है ।

१९६३

४ अनुपस्थिति

शाम है
आखिरी धूप है
और दीवार के सहारे
घुटनो मे सिर छिपाये
बैठी है एक लडकी,
अपने आस-पास धूम मचाते
बच्चो से बेखबर,
बेखबर उन शब्दो से
जो मै चुपचाप
उसके पास रख देता हूँ
अपने प्रेम मे,
—मेरे शब्द
जो उसकी उदास गरीबी को
एक चमक-भर दे सकते है
कोई अर्थ नही ।

दूर बस-स्टैण्ड पर
धूप के एक पीले आयत म

अपनी दैनन्दिन भाषा के साथ
लोग हैं
प्रतीक्षा में,
उनकी निर्जल आखें
चमक उठती हैं बार बार
उनके नरक-स्वप्नों से ।

यकायक बढ़ता है
नीरव
अँधेरा—
रात के साथ
आती हैं बसें
एक के बाद एक भर्राती हुई,
मैं चौंककर देखता हूँ—
सामने की झिलमिलाती इमारतों के पीछे से झांकता
पहले का मन्दिर अब नहीं रहा—

लोग चल दिये,
चली गयी लड़की भी—
दूर किसी झोपड़ी में
कोई
अपने बच्चे को चीखकर पुकारता है

मेरे शब्द
मैं नहीं जानता
अब कहाँ हैं ?

१९६४

५ निश्शब्द

एक ऊँची इमारत की पाचवी मजिल की
एक खिडकी से
एक आदमी ने अपने का वाहर फेंक दिया है
मेरे शब्द उछलकर
उसे बीच मे ही झेल लेना चाहते है
पर मै हूँ
कि दौडकर लिफ्ट मे चढ
दफ्तर तक जाता हूँ
पता लगाने
कि नयी जगह पर नियुक्ति कब होगी।

वाहर आता हूँ
सडक पर जमा भीड से बचकर
चमेली का गजरा और
दो गुब्बारे खरीदता हूँ
और
निश्शब्द
घर जाता हूँ।

१९६४

६ शहर के पार—मौत !

महीनो बाद लौटकर आता हूँ अपने शहर
और खुदी हुई सडके देखकर
शहर के पार चिल्लाता हूँ—मौत ।
कोई नही सुनता
        न कोई ध्यान देता है

एक मन्दिर के पास बैठा एक पागल
सूरज की ओर देखते हुए
खिलखिलाकर हँसता है—

लँगडाती हुई एक लडकी
हाथ म पुस्तकें और कापियाँ दबाये
धीरे-धीरे लौटती है अपने घर की ओर
ऊँची इमारतो और भर्राते टेम्पो के बीच
वह निरन्तर चलती रहती है
अपने घर के भारी दरवाजा
बूढी माँ और छोटे भाई की ओर
और स्वर्गीय पिता की ओर
अपने युवा चेहरे पर अनन्त लिये

मैं चिल्लाता हूँ—मौत ।
बसो की प्रतीक्षा मे
चाय की दूकानो पर बैठे लोग
गालिया देते हैं, ठहाका मारकर हँसते है—

परछी मे धूप खाते हुए
बुढापे से लगभग अन्धे बाबा के सामने

आकर फुदकने लगती है एक चिड़िया
बाबा गश खाकर गिर जाते हैं
        कुरसी पर
और चिड़िया उछलकर
बैठ जाती है उनके कन्धों पर
मैं चिल्लाता हूँ—मौत !
तभी बाबा आँखें खोलते हैं
और पूछते हैं—क्या बजा है ?

आसमान अपना नीलापन धीरे-धीरे छोड़ देता है।
पुराने अँधेरे में लिपटकर सोता है शहर।
ऊँची आवाज़ में चिल्लाता है एक मूँगफलीवाला
पास सोयी बहन सपने में खिलखिलाती है।
मैं भी मुसकराता हूँ।
खिड़की से ठण्डी हवा का एक झोंका आता है।
मैं डूबता जाता हूँ नींद में
मौत से बेखबर और शान्त।

मन्दिर की छाया में पागल
धीरे धीरे अकड़ता है
        ठण्ड में।

१९६४

७ उसके बाद

वह चली गयी है
लेकिन अपना शहर,

जो मेरे और उसके बीच
कभी एक चट्टान था
कभी एक नरम बिस्तर,
मैंने नहीं खोया है,
मेरी भाषा अब भी मेरे पास है।

नगरपालिका को कोई खबर नहीं है
इस सब की—
और उसका भाई
किताबों की दूकान में
मुझसे अदब से मिलता है।
मां के चेहरे पर
दैवी उदासी है,
करुणा सिर्फ़, बूढ़े चेहरों
जूठे बरतनों के पीतल में झलकती है।

सुख और तृप्ति की याद के आर-पार
हृदय स्पष्ट देखता है
ऊबड़-खाबड़ उदासीनता
और शहर को—

एक अकेली खिड़की खुलती है
एक अपरिभाषित आकाश पर
एक निस्तब्ध सड़क पर
अपने शब्दों को भय में लपेटे
पर सीटी बजाता हुआ
रोज़ रात गये
मैं लौटता हूँ—अपने घर।

१९६५

८

प्रार्थना और चीखके बीच

जहाँ तुम थी
अपने नाचते शरीर से
अन्तरिक्ष को प्रेम जैसे
एक सक्षिप्त अनन्त मे ढालते हुए
वहाँ क्या मैं रख सकता हूँ शब्द—
उनका कोई सयोजन जो काव्य हो सके ?
तुम्हारा मुक्त अकेलापन
आलोकित आकाश है
जिसे मेरी कोई कामना, कोई चीख
छू भी नही सकती।
वहा अतीत एक किरण है
और भविष्य एक अचानक फूल
शाखाएँ कुसुमित होती है मुद्राओ मे
मुद्राएँ एक नीरव प्रार्थना हैं
और सगीत एक अकेलापन
चट्टानें फूल है और फूल चट्टानें
शरीर एक समुद्र
और समुद्र एक आकाश
और आकाश एक अकेली चीख
और चीख एक सम्पूर्ण प्रार्थना।
मै देखता हूँ
धीरे-धीरे पास आते अन्त को
नदी एकाकार रोती है समुद्र से अनजाने

जल लौट आता है
समय और कामना मे —
पहली बार मैं पहचानता हूँ,
शब्दो के अवसाद मे
प्राथना और चीख के बीच स्थगित
कविता
जो कही नही रखी जा सकती ।



शुद्धि-पत्र

पृष्ठ सं०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२०	महिला	महिमा
५	२	चमक्दार	चमकतार
९	१५	को	दो
९	१९	वह	वे
१०	३	उत्सवनर	उत्सवनगर
२६	६	मेरे	तेरे
२८	५	तृप्त	तप्त
४४	१९	दिन	दिल
६३	४	भिन्नताएँ	मित्रताएँ
७४	१०	'वहाँ और' के वाद	'न' जुड़ना चाहिए
७५	२	जायेगा	आयेगा
८८	२३	रोती	होता



